Knowledgeable Research –Vol.1, No.8, *March 2023*

Web: http://www.knowledgeableresearch.com/

पहाड़ी लघु चित्रण के लिये सहायक सामग्री तैयार करने की पारम्परिक विधि

डा0 बलबिन्द्र कुमार (शोधार्थी),

अतिथि संकाय (सहायक आचार्य) पहाड़ी चित्रकला ,

अर्न्तबिषयक अध्ययन विभाग

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला–05

Email: balbinderkangri9@gmail.com

****

शोधसार

भारतीय लघु चित्रकला में कलाकार एक ही तकनीक और सामग्री का उपयोग करते हैं। वे आम तौर पर कागज के एक टुकड़े पर या एक विशेष बोर्ड पर चित्र बनाते हैं। कभी-कभी वे चित्र बनाने से पहले दीवार पर सफेद चाक की एक परत लगा देते हैं।फिर वे उस परत के ऊपर चित्र बनाते हैं औररंग जोड़ना शुरू करते हैं।
हर कलाकार का इसे करने का अपना तरीका होता है। कुछ कलाकार दूसरे भाग पर जाने से पहले एक भाग ख़त्म कर देते हैं, जबकि अन्य एक ही बार में सभी रंग जोड़ देते हैं और बाद में किसी भी गलती को ठीक कर लेते हैं। शुरू करने से पहले, वे चित्र को एक चिकने पत्थर पर उल्टा रख देते हैं और उस पर एक विशेष शंख या पत्थर से थपथपा देते हैं। इससे रंग चिकने हो जाते हैं और चित्र बेहतर दिखता है। तस्वीर
को सुंदर बनाने और लंबे समय तक चलने के लिए पूरी प्रक्रिया अच्छी सामग्री के उपयोग पर निर्भर करती है।

Keywords: लघु चित्र, पहाड़ी लघु चित्र, रेखांकन, पारदर्शी रेखांकन.

****

भारतीय लघु–चित्र रचना हेतु एक ही तकनीक के चलते एक जैसी ही सामग्री कौ इस्तेमाल में लाया जाता है और चित्रण–विधि के सम्बंध में सामान्यतः इकहरे कागज, बोर्ड पर चिपकी वसली, या स्वतन्त्र वसली पर रेखांकन के उपरान्त सफेद हल्की खड़िया की कोटिंग चढ़ाई जाती है। उस कोटिंग के नीचे वह पारदर्शी रेखांकन जो दिख रही है, उसे फिर रेखांकित कर लिया जाता है तथा रंग भरना प्रारंभ कर दिया जाता है। सब कलाकारों की अपनी–अपनी विधि है। कुछ एक भाग पर रंग लगाकर उसे फिनिश भी कर लेते या ठीक से रेखाकन करने के बाद ही दूसरा रंग लगाते हैं। इस प्रकार तस्वीर टुकड़ों–टुकड़ों में रंग भर कर पूरी की जाती है। कुछ एक साथ ही सब रंग लगाकर फिर रेखांकन करने के उपरान्त

बाहर निकले रंग को समीप के रंग से दबा कर ठीक करने के बाद एक –एक भाग को पूर्ण करते हैं। खोलाई प्रारम्भ करने से पूर्व संगमरमर की अच्छी पालिश की हुई शिला या संगमरमर पर तस्वीर को उल्टा रखकर पीछे पत्थर की घोटी या शंख से घोटना आवश्यक होता है। जिससे तस्वीर पर लगे रंगों की सतह चिकनी हो जाती है रंगों के दाने दब जाते हैं, जिससे परदाज या रेखांकन आदि सब कुछ कोमलता से होता है और कलम ठीक चलती है और चित्र पूर्ण किया जाता है। यह समस्त कलात्मक प्रक्रिया केवल अच्छी सामग्री के इस्तेमाल पर निर्भर है ताकि चित्र सुन्दर, मनोहारी एवं दीर्घ आयु वाला बन सके।

लघु–चित्रों में प्रयुक्त श्रेष्ठ सामग्री को बनाने की परम्परा

कागज भारतीय लघु चित्र कागज पर ही अधिक बने हैं। मूलतः चित्र रचना का प्रारम्भ गुफाओं की पत्थरीली दीवारों पर हुआ तथा जैसे–जैसे मानव विकसित होता गया वह मृद–पात्र, लकड़ी, हाथी दाँत, भोजपत्र, कपड़े आदि विभिन्न धरातलों पर चित्र रचना करने लगा। कागज के अविष्कार से चित्र रचना प्रक्रिया सहज हो गई, अतः यह माध्यम अधिक लोकप्रिय हो गया। भारत में ईसा से 327 वर्ष पूर्व रूई या कपड़े की कतरनों से कागज बनाया गया था। विलियम रेइत्त के अनुसार काश्मीर के शासक जहन–उल–आवेद्दीन ने अपने शासनकाल (1420–1470 ई०) में कागज बनाने वाले कारीगर समरकन्द से बुलवाये थे। डॉ. रायल के अनुसार उत्तर के पहाड़ी प्रदेश में कागज बनाने की कला पनप रही थी। वह भारत के शेष प्रान्तों में चल रही पद्धति से भिन्न थी। काश्मीर के कागज निर्माता आज भी उसी समरकन्दी पद्धति में काम करते हैं। हिमालय की ओर सण (जूट) का प्रयोग ही कागज के लिये नहीं किया जाता था, सूत आदि का भी प्रयोग होता था। यह विचारणीय है कि अरब कागज बनाने के लिये टाट या घास का प्रयोग नहीं करते थे यद्यपि यह माना जाता है कि इसका प्रयोग अरबों ने ही सिखाया था। इससे यह शंका होती है कि अरबों द्वारा कागज बनाने की विधि खोज लेने से पूर्व ही कहीं सण से कागज बनाने की विधि पहले से ही भारत में विद्यमान रही है। कागज अरब से आता था, पर उससे भी पूर्व पंजाब के सियालकोट में कागज का कारखाना चल रहा था और वहां का बना हुआ कागज सियालकोटी कहलाता था। पर अच्छा होते हुए भी सियालकोटी कागज श्रेणी के मामले में दूसरे नम्बर पर ही ठहरता था। चित्र बनाने के लिये मुख्यतः ईरानी और इस्पहानी कागज ज्यादा काम में लिये जाते थे। मनाकिवे हुनरवान के

लेखक अल इफान्दी ने अपनी पुस्तक में चित्रकला पर भी सामान्य बातें लिखी हैं। उसने तुर्की के समरकन्दी कागज को अच्छा करार दिया है। देमास्कस में बहुत साधारण किस्म का कागज बनता था। कागजों के अन्य प्रकार जो उस समय उपलब्ध थे वे निम्न हैं दौलताबादी, खतई, आदिलशाही, हरीरी, सुल्तानी, हिन्दी, निजामशाही, गौनी, नाख्यार, बाँसी, टाट, तुलत आदि।

जहांगीर के समय में भी कागज बनाया गया है। जाहंगीर के समय में भी कागज, उद्योग दानापुर, जुलापुर, मथुरा, काल्पी, सियालकोट, अहमदाबाद और दौलताबाद में पनप चुका था। सांगनेर में बन रहे कागज की किस्म यद्यपि समय की मांग के अनुसार बदल चुकी है, पर आज भी वहाँ कुछ बुजुर्ग ऐसे हैं जो माँग के अनुसार जैसा चाहो वैसा कागज बनाकर देते हैं। मेबाड़ में घोसुण्डा तथा जयपुर में माधोपुरी कागज प्रसिद्ध रहा है। जयपुर की तोजियो में दौलतावादी, अफसानी, गुजराती और सवाई जयपुरी कागजों का नामोल्लेख है।

वसली बनाना

प्राचीन पुस्तकों के गत्तों को देखने से सिद्ध है कि वसली बनाने की विधि प्रचीन थी। कलाकारों ने इस पद्धति को चित्रों में भी प्रयुक्त किया जिससे चित्र स्थाई रह सके। इसमें दो पतले कागजों को आपस में चिपकाकर मोटा किया जाता है। सामान्यत : तीन से ज्यादा कागज नहीं चिपकाये जाते है। पर ऐसा कोई नियम नहीं है। वसली बनाने के लिये पहले लेई बनानी पड़ती है। कुछ मैदा की बनाते हैं कुछ अरारोट की। जयपुर की तोजियों में सिघाड़े की मैदा का भी उल्लेख है। पहले मोटा गेहूँ साबुत या थोड़ा फोड़कर पानी में चार–पाँच दिन भिगो दिया जाता है। मेवाड़ क्षेत्र में इसके साथ जंगली अनाज सावा और बलीचा भी मिलते थे। कठिनाई के दिनों में राणा प्रताप ने इस क्षेत्र का ही सेवन किया था। भीगने के बाद इन्हें मथकर छान लिया जाता था जिससे भूसी आदि अलग हो जाए फिर इसे उबलते पानी में डालकर आवश्यकतानुसार ऊपर से उबलता पानी डालते रहते और हिलाते रहते है। इसे कभी भी सीधी आग पर गर्म नहीं किया जाता है। घुलकर तैयार हो जाने के बाद इसका लेई के रूप में प्रयोग किया जाता है। मैदा या अरारोट की लेई बनाते ही तुरंत कभी काम में नहीं लानी चाहिए। ऐसा करने से वसली कड़क हो जाती है। लेई को 24 घण्टे के बाद ही काम में लिया जाता है। बनाते समय लेई में थोड़ी

फिटकरी डाल देने से कागज को कीट आदि नहीं खाते। अक्सर दोनों कागजों पर ही पतली लेई लगाकर चिपकाया जाता है। यदि एक पर ही लेई लगाई जाए तो दूसरे कागज को पहले ही गीला करके छोड़ना पड़ता है। गीला होकर कागज बढता है अतः पहले ही गीला कर देने पर वसली में चिपक जाते हैं। इसी प्रकार तीसरा कागज भी लगा लिया जाता है। फिर ऊपर सूखा कागज रखकर कपड़े की गद्दी से वसली को रगड़–रगड़ कर घोट दिया जाता है ताकि सब कागज ठीक प्रकार से चिपक जाये। लेई आवश्यकता से अधिक गाढ़ी लगाने से वसली कठोर हो जाती है। जरूरत से ज्यादा पतली लेई लगाने पर कागज ठीक प्रकार चिपक नही पाते तथा समान न लगने पर वसली टेढ़ी–मेढ़ी हो जाती है। इसे डुबका पड़ना बोला जाता है। इन दोषों से मुक्त वसली ही अच्छी होती है। अन्तिम सतह जिस पर चित्र बनना है, लेई का लेप लगाया जाता है जिससे कागज रंग अधिक न पिये। चित्रण हेतु कलाकार दो विधियों से काम करते हैं। एक वसली पर अस्तर लगाकर सीधे ही काम प्रारम्भ कर देना तथा दूसरे वसली को तख्ती या बोर्ड पर चिपकाकर चित्र प्रारम्भ करना। दूसरी विधि के लिये वसली को हल्का नम करके पीछे चारों ओर कागज के किनारे–किनारे लगभग आधा इन्च चौड़ाई तक लेई लगाकर वसली चिपका दी जाती है। इस प्रकार किनारों के अतिरिक्त सारी वसली बोर्ड से अलग रहती है। इसका एक लाभ तो यह है कि तस्वीर सीधी रहती है। पूर्ण होने पर चिपके हुए अंश को अन्दर–अन्दर चाकू से काट लिया जाता है। इससे चिपका हुआ अंश तो बोर्ड पर ही रह जाता है और तस्वीर अलग हो जाती है। लेकिन इस विधि में चित्र घोटा नहीं जा सकता। घोटने हेतु वसली का स्वतन्त्र होना आवश्यक है। बिना घुटाई के चित्र अच्छा तैयार नहीं हो सकता। कुछ कलाकार वसली बनाते समय ही उसे तख्ती पर चिपका लेते हैं तथा जितने बोर्ड हो उतनी ही वसली बन पाती है।

तुलिका बनाना

(8वीं शताब्दी) में तूलिका का नाम चित्र बट्टिय है तथा समराङ्गण सूत्रधार में लेखनी कूर्चन के तीन प्रकार बताये हैं। यथा –लेखिनी त्रिविध ज्ञेया स्थूला सूक्ष्मा च माध्यमा। तूलिका कलाकार स्वयं इतनी कौशल से बनाते है कि यदि हाथ थोड़ा सा भी कांपे तो रेखा टूट नहीं सकती, जो भी रेखा खींची जायेगी, वह प्रवाहमय और सशक्त होगी जिससे देखते ही आँखें प्रशंसा किये बिना न रह सके।

संस्कृत में ब्रश के लिये तूलिका शब्द है। कलाकार अपनी आम भाषा में इसे कलम कहते हैं। विभिन्न शैली के चित्रों को भी कलम नाम से पुकारा जाता है।

मुख्यतः अलग–अलग पतली, मोटी,मध्यम कलम, अलग–अलग काम के लिये अलग–अलग बालों से बनाई जाती है। चित्र पर रंग जोड़ने के लिये मोटी या मध्यम आकार की कमल की आवश्यकता होती है। यह बकरी के बच्चे के कानों या पूंछ अथवा कहीं के भी मुलायम और अच्छे बाल मिल सके, उन बालों से गाय के बछड़े या बछड़ी के कान के भीतर के बाल, नेवले की पूंछ के बालों की बांधी जाती है। इन बालों को फंसाने के लिये कबूतर के पंख वाले परगजे, मोर या मोरनी के पंख का वह भाग जो पूरे पंख की जड़ का भाग अल्प पारदर्शी एवं सफेद होता है काम में लिया जाता है उस हिस्से को काटकर कुछ देर पानी में भिगोने के बाद साफ कर लेते हैं फिर उसका बारीक जड़ की ओर वाला मुख इतना चौड़ा काटा जाता है। जिसमें बंधी हुई कलम उसमें कुछ दबकर समा सके। बाल डालने के बाद पीछे बांस की गोल डंडी लगा दी जाती है और कलम तैयार हो जाती है। बढ़िया काम करने के लिये गिलहरी की पूँछ के बालों के ब्रश बनाई जाती है।

तुलिका कलम बांधने की विधि गिलहरी के बालों की लट लेकर उसे गीला करके दाहिने हाथ के अंगुठे और पहली अंगुली से पकड़ कर देखते ही पता चल जाता है कि नोक बंध रही है या नहीं। बांये हाथ के अंगुठे के नाखुन और उसी हाथ की पहली अंगुल के अंदर के भाग से फालतु बाल पकड़–पकड़ कर निकाल दिये जाते हैं। यदि बाल ज्यादा ही अव्यवस्थित हो तो उस लट में से एक मोटी लट खींच कर वापिस उसी लट में नोक बराबर लगा का मिला दी जाती है। बीच–बीच में इस लट को भिगो–भिगो कर बायें हाथ के अंगूठे के नाखुन पर घुमाकर देखते रहते हैं। घुमाते समय जो भी बाल बाहर निकलें, उसे ही सावधानी से खींच कर बाहर निकाल देते हैं। घूमते समय इस नोक से एक भी बाल बाहर नहीं निकलना चाहिए और नोक फटनी नहीं चाहिए। बांधना शुरू करने पर स्वयं ही अनुभव होता रहता है कि किस बाल को कैसे ठीक किया जा सकता है या निकालना ही पड़ेगा। जब नोक ठीक से घूमने लगे तो उस नोक को किसी जगह पर इस प्रकार रखा जाता है जिससे उसका पीछे का भाग थोड़ा स्वतन्त्र रहे। अब बारीक धागे में एक गांठ देकर उस गांठ को इतना खुला रखा जाता है जिसमें व्यवस्थित किये हुए

बाल घुस सकें। यह काम उन बालों को पीछे से पकड़ने के स्थान पर आगे के नुकीले भाग को पकड़ कर पीछे का भाग स्वतन्त्र रख कर भी किया जा सकता है। एक गाँठ लगने के बाद दूसरी गाँठ डोरे का दूसरा घेरा बनाकर लगाई जाती है। पहली गाँठ थोड़ी ढ़ीली रखी जाती है, दूसरी उससे सख्त और तीसरी गाँठ जितनी सखत लग सके लगाने के बाद पाँच से छ गाँठ लगा दी जाती है। कबूतर के पंख का पीछे का भाग पानी में भीगो कर साफ करने के बाद यह नोक पिछले हिस्से से डाल दी जाती है। आगे का हिस्सा उतना ही काटा जाता है जिसमें बंधे हुए बालों की मोटाई से छिद्र अधिक चौड़ा न हो और कम भी न हो। कबूतर के पंख का यह पिछला हिस्सा उतना ही लिया जाता है जितना अल्प परदर्शी भाग होता है। इस प्रकार तैयार कलम के बाँस की डण्डी लगा ली जाती है।

साधारणतः कलम बांधने के बाद तत्काल अच्छा काम नहीं कर पाती। इससे पहले अन्य कामों यथा पौधे, बूटी, सोने की खुलाई या सीधी अथवा गोल रेखाएं खींचने के बाद काम में लिया जाता है। जब ब्रश की नोक कुछ घिस जाए तब इससे अच्छा काम हो सकता है। कुछ कलाकार ऐसी कलम बांधते है कि उससे तत्काल अच्छा काम कर सके। काम में आने के बाद जब कलम की आगे की नोक घिस जाए तो उसे खोल कर घिसे बालों को निकाला भी जा सकता है, जिससे पीछे बालों की नोक, जो घिसी नहीं है, वह दूबारा काम में ली जा सके। सब कुछ बताने के उपरांत भी गिलहरी पकड़ना बालों को सुरक्षित रखना, उन्हें बाँधना, पैरगजा में ड़ालना आदि सब कौशलपूर्ण कार्य हैं, जिसे सतत अभ्यास से, कुछ अपने अनुभव से कुछ देख–पूछ कर ही सीखा जा सकता है। वर्तमान में तुलिका नेबले के बालों से बनती है। इसमें मोटी तथा बारीक सभी प्रकार की होती है। मोटी कलमें राजस्थानी चित्र बनाने में रंग जोड़ने के काम में आ जाती है पर बारीक पर बारीक काम के लिये गिलहरी के बालों की कलम ही लेनी पड़ती है। नेवले के बालों की कलम में कबूतर के पंख के स्थान पर पीतल की नलकी काम में ली जाती है। बाँस के स्थान पर, अन्य लकड़ी की खराद पर बनाई हुई डंडी काम में ली जाती है।

रंग तैयार करनाः– सर्वप्रथम उपलब्ध रंगों को शिला या खरल पर घिस कर बारीक चूर्ण बनाया जाता है फिर उस रंग को पानी में घोल पर थोड़ा गोंद डालने के उपरान्त नितार लिया जाता है। नितारने की प्रक्रिया तब तक दोहराई जाती है जब तक रंग से मिट्टी का अंश अलग न हो जाय। तत्पश्चात् पानी

अलग करके रंग सुखा लिया जाता है और गोली बनाकर या वैसे ही रख लिया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर वांछित रंग लेकर आवश्यकतानुसार गोंद डालकर अंगुली या अंगूठे से पानी के साथ धीरे–धीरे घोटकर रंग तैयार कर लिया जाता है। घुलते–घुलते रंग पेस्ट की तरह गाढ़ा होने लगता है, तब ताकत लगानी पड़ती है। इस समय लगाई गई ताकत के कारण रंग की घुटाई अच्छी हो जाती है। इस प्रक्रिया को ताव देना कहा जाता है। तैयार रंग एक बार सूखने दिया जाय और फिर पानी मिलाकर घोट कर आवश्यकतानुसार पतला करके काम में लिया जाय, वह उत्तम होता है। इस तरह सगंरफ, खड़िया, पीला, रामरज, गेरू, हराबटा आदि रंग तैयार किये जाते है।

चित्रों में प्रयुक्त रंगों को चार मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) मूल व भूमि (खनिज) रंग (2) वनस्पति रंग (3) आक्साइड रंग (4) धातु रंग

चित्र बनाने के अन्य औजार व उपकरणः– चित्र प्रारम्भ हो जाने के उपरान्त हर कदम पर कुछ अन्य उपकरणों आदि की आवश्यकता होती है जिनमें चरबा बनाने के लिए पतला या मोटा कागज भी आवश्यक होता है। राजस्थानी चित्रों में चरबा एक प्रकार से मूल रेखांकन है, जिस पर हर रेखा को बारीक सूई से छेद कर हमेशा काम आते रहने के लिये तैयार किया जाता है। इस रेखांकन को वसली पर रखकर उस पर काले कोयले के चूर्ण की कपड़े की पोटली हल्के–हल्के पीटकर घुमाई जाती है। इससे यह काला चूर्ण छिद्रों से होकर नीचे कागज पर चला जाता है और एक कच्चा खाका बिल्कुल वैसा ही तैयार हो जाता है। इस पर कलम से रेखांकन कर दिया जाता है, जो चित्र बनाना प्रारम्भ करने की पहली सीढ़ी है। कुछ कलाकार चित्र बनाकर उसक चरबा बाद में भी बना लेते हैं। खाका बनाने के लिए अल्प–पारदर्शी कागज अधिक उपयुक्त होता है पर ऐसा पहले दुर्लभ था। कुछ अच्छे मुगल चित्रों के खाके ही ऐसे कागज पर देखने को मिलते है। ये कागज के न होकर हिरण की खाल के टुकड़े होते थे, जो वर्क बनाने हेतु काम में लिये जाने के कारण पिट–पिट कर पतली हो जाती है ।

ओपणी जो हकीक पत्थर का ही एक छोटा टुकड़ा होता है। चित्र पर सोने की हिलकारी लगाने के बाद उसे ऊपर से घोटने हेतु ओपणी की आवश्यकता होती है। इस काम के लिये पहले सूअर के दाँत या

रीछ के नाखून का उपयोग भी होता था। प्रयोजन केवल यही है कि कलाकार अपनी आवश्यकता के अनुसार आकार की कोई कठोर और पालिशदार चीज से यह काम कर सकता है।

एक कुछ **मोटी सूई** सोना लगे हुए हिस्से पर बिन्दुओं के डिजाइन बनाने के लिये काम में ली जाती है। इससे उसकी नोक के आकार के सतह में गड्ढ़े हो जाते है, जो केवल रंग की सतह की मोटाई तक ही गहरे होते हैं, पर वे हिस्से खूब चमकने लग जाते हैं, जिससे इस प्रकार बने डिजाइन में अच्छा आकर्षण आ जाता है।

जजमल जिसे अंग्रेजी में **लाइनर** कहा जाता है, चित्र पर खत खींचने के लिये अत्यन्त आवश्यक होता है। दो छोटी, लगभग एक डेढ़ ईचं लम्बी आमने–सामने चपटी समानान्तर सलाखें ऊपर जुड़ी और नीचे से खुली होती है बीच में एक पेच से इसकी चौड़ाई की कम ज्यादा किया जाता है। रेखा जितनी मोटी खींचनी हो, इनकी दूरी उतनी ही बढ़ा दी जाती है। पर इससे ज्यादा मोटी रेखा भी नहीं खिंच सकती, अन्यथा सारा रंग एक साथ नीचे उतरकर चित्र पर धब्बा डाल देता है। रेखा खींचने के लिए इसके बीच की चौड़ाई में आवश्यकता के अनुरूप रंग भरकर स्केल की सहायता से चलाया जाता है। ज्यादा मोटी रेखा खींचने के लिए दो रेखाएँ खींच कर बीच का भाग तूलिका से भर दिया जाता है।

कैंची, चाकू, सीपें आदि भी चित्र–निर्माण में काम आती हैं। सीपों में अपनी आवश्यकतानुसार रंगत का रंग तैयार किया जाता है। खड़िया बड़ी सीप में घोली जाती है।

सन्दर्भ सूचीः–

1. ओहरी वि०सी०– द तकनीक ऑफ पहाड़ी पेंटिग– 2001
2. ओहरी वि०सी०– आर्टस ऑफ हिमाचल शिमला–1975
3. किशोरी लाल वैद्य, ओमचंद हाड़ा– पहाड़ी चित्रकला, 1969, दिल्ली
4. गोस्वामी बी०एन० –पहाड़ी पेंटिगस : द फेमिली एस बेसिस ऑफ स्टाइल– मार्ग 21:4–1968
5. चन्द्र मोती– दा टेकनीक ऑफ मुगल पेन्टीगं लखनउ–1949

6. द्विवेदी प्रेमशंकर : दूबे बिन्दू '' चित्रसूत्रम् (विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला), काशी हिन्दू वि0 वि0 वाराणसी–5, 1999

7- सुमहेन्द्र, महेन्द्र कुमार शर्मा– राजस्थानी रागमाला चित्र–परम्परा ,पब्लिकेशन स्कीम जयपुर, भारत,1990,